जैनशास्त्र और मंत्रविद्या

ले. राममूर्ति त्रिपाठी

भारतीय धर्म-साधना में अधिकार भेदभाव के अनुसार प्रस्थान-भेद है। श्रमण प्रस्थान का 'शासन', 'अनुशासन' या 'शंसन' करनेवाला शास्त्र भिन्न है और ब्राह्मण प्रस्थान का भिन्न। श्रमण प्रस्थान में भी दो धाराएं हैं - बौद्धधारा और जैनधारा। जैनधारा में भी साधकों के संस्कार-भेद से अवान्तर धाराएं मिलती हैं इसी लिए उनका मूल शास्त्र आगम अपना है। इनके मूलभूत पवित्र ग्रन्थ दो प्रकार के हैं - चतुर्दशपूर्व और ग्यारह अंग। दिगम्बर माने हैं कि 'पूर्व' संज्ञक मूल आगम विलुप्त हो गए हैं तथा विलुप्त १४ पुर्व के अवशिष्ट अंगों को दिट्ठवाय नामक बारहवें अंग में संकलित किया गया था - पर इस मान्यता पर दिगम्बर लोग आस्था नहीं रखते। जो हो - उनके मूल ग्रन्थ ये ही हैं। इनके सिद्धान्तों की संख्या ४६ हैं जिनमे ११ अंग, १२ उपांग, १० प्रकीर्ण, ६ छेदसूत्र, ४ मूलग्रन्थ तथा २ स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। उमास्वाति को दोनों ही सम्प्रदाय के लोग सम्मान से देखते हैं। तत्वार्थ सूत्र उनका प्रामाणिक और सम्प्रदाय में समादरणीय ग्रन्थ है। सम्यक, ज्ञान, सम्यक दर्शन और सम्यक् चारित्र - ये सम्मिलित रुप से मोक्ष के मार्ग माने जाते हैं। मोक्ष में सम्यक् श्रद्धा, श्रद्धापूर्वक उनका ज्ञान और आचरण में उनका उतर आना - तीनों ही सम्मिलित होकर उपादेय है। इस जैनशास्त्र का माहात्म्य बताते हुए 'समयसार' में कहा गया–

निहचै में रुप एक विवहार में अनेक,
याही ते विरोध में जगत भरमाया है।
जग के विवाद नासिवे कों जिन आगम है
जामै स्थाद्राद नाम लच्छन सुहायो है।
वरसन मोह जाको गयो है सहज रुप,
आगम प्रमान ताके हिरेदे में आयां है।
अने सौं अखंडित अनूतन अनन्त तेज,
ऐसौं पद पूरन तुरन्त तिनि पायौं है।५५।।

जहाँ तक इस महनीय जैनशास्त्र में 'मंत्र' का सम्बन्ध है - सबसे पहली बात है - उसका स्वरुप निरुपण। तदनन्तर उसके विविध पक्षों पर विवेचन। जहां तक मंत्र के स्वरुप का सम्बन्ध है - मंत्र एक नाम है - जिसका अपास्य नाभी से सम्बन्ध है। 'नाम' (मंत्र) का दार्शनिक वैज्ञानिक विवेचन करते हुए माना गया है कि मंत्र, नाम और शब्द - किसी बिन्दु पर ये परस्पर पर्याय हैं। यह नाम या शब्द - दो प्रकार का है - निरतिशय और सातिशय (Pure and Approximate) इसी को प्रकृत और विकृत भी कह सकते हैं। बात यह है कि जो शब्द हम सुनतें हैं वह स्थूल है अर्थात् सातिशय है। कुछ शब्द ऐसे है जिन्हे हम मंत्र की सहायता से सुन सकते हैं - निश्चय ही वह शब्द् स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म है। सूक्ष्म शब्दि संघातात्मक भी हो सकता है और परमाण्वात्मक भी। पूर्ववर्ती "दो रुप संमिश्र है और परवर्ती" एक अमिश्र। 'बृहद् द्रव्य संग्रह' का कहना है–

सद्दो बंधो सुहुमौं थूलो संठाण मेदतम छाया।
उज्जोदादवसहिया भुग्गलदव्वस्स पज्जाया।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द, बंध, साक्षम्य, स्थौल्य, संस्तानभेद, तमश्छाया, आतप, उधीत सहित - ये सभी पुद्गल द्रव्य के पर्याय हैं। शब्द दो प्रकार के हैं - भाषात्मक और अभाषात्मक। भाषात्मक भी दो प्रकार का है - उदारात्मक तथा अनदारात्मक। अदारात्मक के भी संस्कृत प्राकृत आदि अनेक प्रकार हैं। अनदारात्मक भेद भी द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों में तथा सवैज्ञ की दिव्यध्वनि में हैं। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिकृतथा वैत्रसिक भेद से दो प्रकार हैं। इस प्रकार मंत्र जिन शब्दों या मातृकाओं से घटित होता है - उनके सम्बन्ध में यह स्थिर हुआ कि भाषा वर्गणा का घटक परमाणु रुप और संघात रुप-द्विविध मातृकाएं होती हैं - अर्थात् उनके सूक्ष्म और स्थूल - दो रुप होते हैं। ब्राह्मण दर्शनों या तंत्र ग्रन्थों में कहा गया है - 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे' वाक् से ही सारी सृष्टि हुई है और यह वाक् ही प्रजापति है। निश्चय ही जो सबका कारण है - वह किसी से अपनी उत्पत्ति की अपेक्षा नहीं करता - अर्थात् वह मूल तत्व है। वह शब्द जिसकी उत्पत्ति और ज्ञाप्ति में तमाम कारणों की अपेक्षा है - वह स्थूल शब्द है - श्रीत्रग्राह्य है। यह सातिशय है। यही योगज शक्ति ग्राह्य अवस्था में सूक्ष्म है। बात यह है कि स्थूल संघातात्मक शब्द श्रोत्रग्राह्य है - पर परमाणु रुप नहीं - दो परमाणुओं से निर्मित संघातात्मक शब्द के स्पन्दन से जो ध्वनि बनती है (वह भी शब्द द्रव्य ही है) वह सामान्य श्रीत्रंन्द्रिय से ग्राह्य नही होगी। कारण, विज्ञान बताता है कि स्पन्दन आवृत्ति की दो सीमाएं हैं - कम से कम और ज्यादा से ज्यादा (Lower Limit and Upper Limit) दोनों सीमाओं का अतिक्रमण करने पर हमारी श्रोत्रंन्द्रिय की शक्ति उसे ग्रहण नहीं कर सकती। पर श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति से ग्रहण नहीं होने का तात्पर्य यह नहीं कि स्पन्दन से ध्वनि होती ही नहीं - अवश्य होती है। समाधि द्वारा हमारी बढ़ी हुई योगजशक्ति से उसका साक्षात्कार हो सकता है। ये दोनों प्रकार के शब्द सातिशय हैं। यदि भाषा वर्गणा के घटक परमाणु पुद्गलों में स्पन्दनजनित ध्वनि है - तो वह निरतिशय है। इसकी ग्रहण शक्ति हमारी निरतिशय शक्ति है - प्रजापति शक्ति है - निर्मात्री शक्ति है - वह शब्द 'तन्मात्र' है। सृष्टि में जो कुछ भी प्रवाहनित्य रुप से बनता-बिगड़ता रहता है - आकर्षण-विकर्षण के कारण और यह आकर्षण-विकर्षण एक गति के ही कारण होता है। वैसे तो सृष्टि ही गति है पर निर्माण के अनुरुप जो आकर्षण-विकर्षण रुप गति है-वह भाषा वर्गणा के घटकपुद्गलात्मक शब्द परमाणुओं में है। इसीलिए उनसे घटित मंत्रो में इतनी 'शक्ति' होती है कि उससे सभी वांछित कार्यो की निष्पत्ति हो जाती है। जयसेन प्रतिष्ठा पाठ में कहा गया है–

अकारादिक्षकारान्ता वर्णा प्रोषतास्तु मातृकाः।
सृष्टि न्यासस्थिति न्याससंहुति न्यासस्त्रिधा॥३७६॥

अर्थात् अकार से अकार (क्+व्+ज) पर्यन्त मातृका वर्ण कहलाते हैं। इनका तीन प्रकार का क्रम है - सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम।

मंत्री में मंत्रराज णमोकार मंत्र है - आत्मशक्ति की पुनः प्राप्ति इसी मंत्र की साधना से होती है। यों तो शान्ति और पुष्टि के निमित्त भी मंत्रीका स्वरुप तथा विधान है इसीलिए मंत्रो की क्रिया निरुपणा है आत्मशक्ति की अभिव्यक्ति के निमित्त और सांसारिक उपलब्धियों के निमित्त। जैनशास्त्रों में दोनों प्रकार के मंत्रो का सांगोपांग निरुपण है। स्वयं णमोकार मंत्र में सब प्रकार ऐहिक और आमुष्मिक - की सिद्धि प्रदान करने की क्षमता है। उक्त श्लोक इस सन्दर्भ में नितान्त महत्वपूर्ण है। णमोकार मंत्र में मातृका ध्वनियोंका तीनों प्रकार का क्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यमान है। संहारक्रम कर्मविनाश का तथा सृष्टि और स्थिति क्रम आत्मानुमूति के साथ लौकिक अभ्युदय का साधक है। इस मंत्र के द्वारा मातृका ध्वनियों के तीनों प्रकारों के मंत्री की उत्पत्ति बताई गई है। प्रत्येक मंत्र में बीजाक्षार होते हैं। इन बीजाक्षरों की निष्पत्ति के सम्बन्ध में बताया गया है–

हलो बीजानि चोक्तानि स्वरा: शक्तय ईरिता: ।।३७७।।

अर्थात् ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यंजन बीज संज्ञक है और अकारादि स्वर शक्ति रुप हैं। मंत्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है। तंत्र-मंत्र के ग्रन्थो में विस्तार के साथ वर्णमातृका की शक्तियों और फलों का उल्लेख मिलता है। मेरी धारणा है कि जब जैनशास्त्र वर्णमातृका में सब प्रकार की शक्तियों का उल्लेख है और शास्त्रोक्त होने से प्रामाणिक है तो उसकी प्रामाणिकता को मान लेने पर यह स्पष्ट है कि ऊपर जिस शब्दशक्तिगत सर्जना की बात की गई है वह युक्तिसंगत और शास्त्रसंगत हो। माना कि जैनशास्त्र के अनुसार सृष्टि नित्य है - पर प्रवाहनित्य ही कहना पड़ेगा, कारण परिणाम तो होता ही रहता है - अत: वह कूटस्थ नित्य नहीं है। प्रवाहनित्य में बनना-बिगड़ना चलता है - वही तो परिणाम है। बनना-बिगड़ना - दोनों में शक्ति की आवश्यकता है और शक्ति वर्णमातृका में है - इसीलिए जनयित्री का धर्म होने से उन्हें मातृका कहा जाता है।

जब यह तथ्य शास्त्रसंगत और युक्तिसंगत है - तब इसकी विश्वसनीयता और बोधगम्यता के निमित्त अपेक्षित उपत्ति देनी ही पड़ेगी! यदि यह मान लिया जाय कि प्रत्येक वर्ण में तत्-तथ ऐहिक-आमुष्मिक उपलब्धि की क्षमता है तो वर्ण सबको माम ही हैं - शक्तिलाभ सभी को क्यों नहीं हो जाता? लगता है तदर्थ एक साधना की विशिष्ट प्रक्रिया है - उस प्रक्रिया से मंत्र जप किया जाय - तभी उसमें निहित शक्ति का स्वायत्तीकरण होता है - वह शक्ति अदिव्यध्यनि में नहीं - दिव्यध्वनि में है जिसका साक्षात्कार सर्वज्ञ मुनि को होता है। यह दिव्यध्वनि क्या 'तन्मात्र' या 'निरतिशय' शब्द की ही तो नहीं है? पर उसका साक्षात्कारपूर्व वांछित उपलब्धि में विनियोग कैसे हो? साक्षात्कार या स्वायत्तीकार कैसे हो? जप ही उपाय है - जो वाचिक, उपांशु और मानस - तीन प्रकार का है और उत्तरोत्तर उत्कृष्ट है। यह सातिशय या स्थूल शब्द उस मातृकाभूत शब्द के साक्षात्कार का माध्यम है।

समस्त बीजाक्षरोंकी उत्पत्ति णमोकार मंत्र से ही हुई है। कारण, सर्वमातृका ध्वनि इसी मंत्र से उद्भूत है। इन सबमें प्रधान 'ॐ' बीज है। यह आत्मवाचक है। पातंजल सूत्र भी है - "तस्य वाचक: प्रणव:" 'प्र' 'नव' - जो बराबर नया रहे - बासी हो ही नहीं। सर्जनात्मिका शक्ति का यही तो परिचय है। ऊँकार को तेजोबीज, कामबीज और भावबीज मानते हैं। प्रणववाचक या परमेष्ठीवाचक - एक ही बात है। ऊँ समस्त मंत्रों का सारतत्व है। जो वर्ण जिस तत्व का वाचक है - उससे उसके अर्थका तादात्म्य है। मंत्र कौ शक्तिशाली करनेवाले अन्तिम ध्वनि में स्वाहा, वषट्, फट्, स्वधा तथा नम: लगा रहता है। णमोकार मंत्र से ही सभी बीजाक्षरों की उत्पत्ति हुई है। अरिहंत (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि-इनके पहले अक्षरों को लेकर सन्ध्यक्षर ऊँ बना है।

बीजाक्षर मंत्र एकाक्षर हैं - ऊँ, ह्रीं, श्रीं, क्लीं - इत्यादि। वैसे युग्माक्षरी, त्रयाक्षरी, चतुरक्षरी, पंचाक्षरी से लेकर सत्ताइस और उसमें भी अधिक अक्षरी मंत्र (ऋषिमण्डल) हैं। श्री णमोकार मंत्र पंचत्रिंशत्यक्षरी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झामाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

मंत्र का सेद्धान्तिक और प्रायोगिक विवेचन 'शक्ति' सिद्धान्त के स्वीकार से ही सम्भव है - जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है। यह शक्ति साधना से जागृत होती है - जो मंत्रों में निहित है।

जैनशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में णमोकार मंत्र की सर्वाधिक प्रमुखता दी ही गई है - शान्तिक और पौष्टिक कर्मो के निमित्त अन्य तमाम मंत्रों का भी साधनविधि के साथ विस्तार से विवरण मिलता है।

मंत्र-जप से पूर्व रक्षामंत्र का जप-विधान है। जो लोग रक्षामंत्र का जप किये बिना ही मंत्रसिद्ध करने बैठते हैं वे लोग या तो व्यन्तरों आदि की विक्रिया से डरकर मंत्र जपना छोड़ देते है या पागल हो जाते हैं। यह रक्षामंत्र भी कर्म प्रकार का है - विशेषत: चार प्रकार का। यह रक्षा मंत्र जपसिद्धि में आने वाली विघ्न-बाधाओं के निवारणार्थ होता है। एक मंत्र है जिसे पढ़कर साधक अंगुली से वज्रमय कोट की रेखा खींचता है और उसके ऊपर चारों तरफ चुटक
पढ़कर साधक अंगुली से वज्रमय कोट की रेखा खींचता है और उसके ऊपर चारों तरफ चुटकी बजाता है। इसका आशय यह होगा कि उपद्रवकारी 'चले जाये, साधक वज्रशिला पर आसीन है।

अन्त में एक बात और ध्यान दिलाना चाहता हूं कि मंत्र की शक्ति का भौतिक उपलब्धियों के निमित्त उपयोग अपनी साधना और मंत्र की शाक्तियों का दुरुपयोग है। उससे प्रदर्शन की भावना और सर्वधाती अहंकार बढ़ता है। अत: सात्विक साधक को चाहिए कि वह आत्मशक्ति - स्वभावशक्ति की पुन: प्राप्ति के लिये। मंत्र साधना करे और प्रदर्शन की भावना से मुक्त होकर आत्महित की ओर प्रवृत्त हो।

उज्जे (म.प.)

● अभिमान के झूले में झकोले लेने वाला रावण महाज्ञानी, प्रतिज्ञानी था किंतु इतना होते हुए भी वह अपने श्रेय-हित का भी विचार नही कर सका। न होने वाले अशुभ कर्मो के उदयकाल से भटककर संपूर्ण जाति, कुल वंश, वैभव और देश के विनाश का स्वयं कारण बना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org